

विस्थापन का आक्षेपवचन

लक्ष्मी

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जंगल की जमीन पर आदिवासियों के अधिकार का मसला बहुत ज्यादा विवादित रहा है। जंगल संसाधनों से भरे हैं। इसलिए विकास के नाम पर होने वाली हर गतिविधि केंद्र में जंगल और उसके आस पास के क्षेत्रों में बसे गाँव आ जाते हैं। जंगलों के संसाधनों से भरे-पूरे होने के कारण राज्य अपना दावा करता है। खासतौर पर उत्तर- उदारीकरण दौर में विकास के नाम पर जंगल के संसाधनों को निजी कंपनियों के लिए खोला जा रहा है। इस पूरी प्रक्रिया में आदिवासियों की मर्जी का कोई ख्याल नहीं रखा गया।¹¹ स्वतंत्रता के बाद के प्रवास की जड़ें स्वतंत्रता पूर्व प्रक्रिया में हैं, विशेष रूप से 1894 का भूमि अधिग्रहण अधिनियम (एसएफ), जिसने राज्य सरकारों को लोगों से बिना पूछे उनकी भूमि से बेदखल करने का अधिकार दिया। लेकिन इस कानून के लागू होने के 100 साल बाद भी अभी तक इस बात की पुष्टि नहीं हो पाई है कि किसके नाम पर लोगों को बेदखल किया जा रहा है। इसलिए पलायन की प्रक्रिया वैसे ही जारी है जैसे 1947 से पहले थी, इसका कारण यह है कि विकास का स्वरूप आज भी नहीं बदला है। तथ्य यह है कि नियोजित विकास के साथ-साथ कमजोर वर्गों के पिछड़ेपन और गरीबी की प्रक्रिया ने भी गति पकड़ी है। आज तक, विस्थापित लोगों और परियोजना से प्रभावित लोगों की वास्तविक संख्या पर कोई आधिकारिक डेटा उपलब्ध नहीं है। इस खंड में, हम विकास के पैटर्न को एक नए कोण से देखने का प्रयास करते हैं।

आज प्रवास का मुद्दा मानवाधिकार का एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रवासन दर औपनिवेशिक काल के दौरान खतरनाक स्तर पर पहुंच गई और 1947 के बाद और बढ़ गई। इसलिए, यह हिस्सा औपनिवेशिक युग से प्रस्तुत किया जा रहा है। औपनिवेशिक युग का मुख्य उद्देश्य भारतीय आर्थिक व्यवस्था को ब्रिटिश उद्योग की जरूरतों के अनुकूल बनाना था। पहला कदम उनके उपनिवेश (भारत) को गैर-औद्योगिक बनाना और ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति के अंतिम उत्पादों को बेचने के लिए एक बाजार के रूप में उपयोग करना था। इसी प्रकार, दूसरा चरण कानूनी प्रक्रिया थी जिसके तहत भूमि और वन कानून बनाए गए थे, जिसका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजों के कब्जे वाले जंगलों में भूमि का हस्तांतरण और खनन, परिवहन और अन्य परियोजनाओं के लिए था। यह 1793 में एक स्थायी बंदोबस्त के साथ शुरू हुआ, असम भूमि अधिनियम 1838, कलकत्ता अधिनियम, 1824, अंत में उपरोक्त सभी कानूनों और भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 (एलएक्यू) को निरस्त कर दिया जो अभी भी अपने तत्काल रूप में है। स्वतंत्रता के बाद की सरकारों ने विकास में निवेश नहीं किया होता, तो देश असफलता के गर्त में डूब जाता। सवाल यह है कि विकास को किस आधार पर मापा जाना चाहिए? ऐसे में भूमि, जल, ऊर्जा, खनिज और वित्तीय संसाधनों के अत्यधिक प्रयोग पर सवाल उठाना जरूरी है। पश्चिमी देशों के लिए यह संभव हो सकता है क्योंकि वह अपने अधीन औपनिवेशिक देशों की लूट पर निर्भर रहते हैं। श्रमिकों का शोषण उनके विकास का हिस्सा है। यूरोप ने अपनी अतिरिक्त जनसंख्या को संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, भारत जैसे देशों में भी भेजा। अधिक जनसंख्या के कारण भूमि का अत्यधिक दोहन संभव नहीं है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, कुल मिलाकर विशेष ध्यान आर्थिक विकास पर रहा है। इसके विपरीत, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और स्वच्छता जैसे सामाजिक क्षेत्रों में निवेश बहुत कम रहा है। नतीजतन शहरी मध्य वर्ग और ग्रामीण उच्च वर्ग को उस विकास से सबसे अधिक लाभ हुआ जिसकी इन सुविधाओं तक पहुंच सुनिश्चित की।

नर्मदा घाटी के मध्य प्रदेश हिस्से में 29 बांध बनाने का प्रस्ताव है, जिसमें से 10 का निर्माण हो चुका है और 6 निर्माणाधीन हैं। शेष 14 में से एक को सूक्ष्म सिंचाई परियोजना में बदल दिया गया है। 13 प्रस्तावित बांधों में से 7 बांधों को मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने 3 मार्च 2016 को रद्द करने के लिए कहा था। रद्द किए गए बांधों में मंडला जिले के बसनिया बांध का नाम भी सामने आया। लेकिन पूंजी और आदिवासियों के बीच लड़ाई में बांध के पुनर्निर्माण का प्रस्ताव रखा गया है। बसनिया विरोधी बांध समिति के सदस्य राज्यपाल के साथ बैठक कर रहे हैं और उनसे पांचवीं अनुसूची में प्रदान की गई विधायी शक्ति का उपयोग करने का आग्रह कर रहे हैं। लेकिन आज तक इस बात का कोई सबूत नहीं मिला है कि राज्यपाल ने आदिवासी मामलों में अपनी शक्ति का इस्तेमाल किया है। बसनिया आदिवासियों का क्या होगा यदि मंडला जिले में 30 साल पहले बरगी बांध से विस्थापित हुए लोगों का अभी तक पुनर्वास नहीं किया गया है, यही उनकी एकमात्र चिंता है। इस विकार ने उसे मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक रूप से बुरी तरह प्रभावित किया है।

मंडला जिले के चकडीही गांव के प्रधान जगदीश धोवे ने बताया कि इसे रोकने के लिए बसनिया विरोधी बांध समिति ने 5 अक्टूबर को शाहपुरा के घुघुवा फांसिल्स पार्क में राज्यपाल से मुलाकात की, हमारे साथ दो विधायक डॉ.

अशोक मेर्सकुला और शाहपुरा के विधायक भूपिंदर मरावी भी थे, जिन्होंने राज्यपाल को एक ज्ञापन देकर प्रस्तावित बसनिया, रघुपुर बांध को रद्द करने की मांग की। ज्ञापन में राज्यपाल को याद दिलाया गया कि संविधान के अनुच्छेद 244 के तहत पांचवीं अनुसूची (धारा 2) के प्रावधान यानी राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में सूचीबद्ध क्षेत्रों में राज्यों की प्रशासनिक शक्तियों में ढील दी गई है। अनुसूचित क्षेत्रों में राज्यपाल को सर्वोच्च शक्ति और अधिकार दिया गया है। पांचवीं अनुसूची की धारा 5(1) राज्यपाल को विधायिका की शक्ति प्रदान करती है।

यह प्राधिकरण संविधान के किसी भी प्रावधान से स्वतंत्र है। यह व्यवस्था की गई है कि आदिवासियों से किसी भी प्रकार की भूमि के हस्तांतरण का नियंत्रण राज्यपाल के अधिकार क्षेत्र में आता है। जल, जंगल और भूमि आदिवासियों की आजीविका के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। जब यह खत्म हो जाता है, तो पलायन और भुखमरी जैसी स्थितियां पैदा हो जाती हैं। देश में पेसा अधिनियम 1996 से लागू है। पिछले 17 वर्षों से सरकारें राज्य के भीतर ग्राम सभा की अनदेखी और आदिवासियों के अधिकारों का हनन करके आदिवासी और ग्रामीण व्यवस्था को जानबूझकर नुकसान पहुंचा रही हैं। पांचवीं अनुसूची में शामिल लोगों को संवैधानिक रूप से अपने निर्णय लेने का अधिकार था। उनके अधिकार छीन लिए गए हैं।

जगदीश ने कहा, 'डेंडोरी में 61 आदिवासी बहुल गांव और मंडला में 18 गांव विस्थापित हो जाएंगे और नर्मदा नदी पर प्रस्तावित बसनिया और रघुपुर बांध से प्रभावित होंगे। इससे 10942 हेक्टेयर भूमि जलमग्न हो जाएगी, जिसमें 3694 परिवारों की 5079 हेक्टेयर निजी भूमि, 2118 हेक्टेयर वन भूमि और 3745 हेक्टेयर सरकारी भूमि शामिल है। मैं नर्मदा घाटी के विकास के लिए दर्जनों योजनाओं पर काम कर रहा हूं। विभाग को लिफ्ट सिंचाई योजना के माध्यम से किसानों के खेतों में पानी की आपूर्ति की व्यवस्था करनी चाहिए। अतः इस क्षेत्र में भी बांधों के स्थान पर लिफ्ट सिंचाई योजना के माध्यम से किसानों के खेतों में पानी की आपूर्ति की व्यवस्था की जानी चाहिए।

मंडला बड़झार पंचायत सरपंच तितरा मरावी कहते हैं, "इसे रोकने के लिए समिति की कई बैठकें हो चुकी हैं। हम सभी बुर्गी बांध के आदिवासियों की स्थिति देख रहे हैं। हमारे पास कृषि के अलावा कोई कौशल नहीं है। यह हमारा काम है." सरकार हमसे जमीन छीनकर बर्बाद करना चाहती है, हम सबको तितर-बितर कर देगी, पता नहीं कौन कहां जाएगा, यह सवाल हमेशा हमारे मन में रहता है, इसका जवाब देने वाला कोई नहीं है।

तितरा ने कहा, "बरगी परियोजना को 1968 में मंजूरी दी गई थी। काम 1974 में शुरू हुआ और 1990 में बांध पूरा हुआ। इसमें मंडला, सिवनी और जबलपुर जिलों के 162 गांवों में 11655 किरायेदारों के 26797 हेक्टेयर शामिल हैं। भूमि जलमग्न थी, जिसमें शामिल था 8478 हेक्टेयर गहरी वन भूमि और 3569 हेक्टेयर राजस्व भूमि 43% आदिवासी, 14% हरिजन और 38% ओबीसी प्रभावित हुए। पुनर्वास नीति की कमी के कारण, पीड़ितों को केवल मुआवजा मिला, लेकिन कोई बहाली योजना नहीं थी। भूगतान के बाद जमीन दिलाने के नाम पर दलालों व बिचौलियों ने लोगों से लूटपाट की। कब तक हम इस लूट के शिकार होते रहेंगे?

तितरा के 18 साल के बेटे देववर्त मरावी ने युवा होते हुए भी सरकार के मुआवजे के पैसे का विरोध करते हुए कहा कि सरकार ने हमसे हमारी पुश्तैनी जमीन ले ली और हमें मुट्टी भर पैसे दिए। वर्तमान पैसे की कीमत क्या है? कम से कम हमें जमीन से पर्याप्त भोजन मिलता है। मुआवजे के पैसे से हमें न तो कृषि भूमि मिलेगी और न ही हम इस पैसे से जीवन भर गुजारा कर पाएंगे।

संघर्ष समिति के सदस्य डंडोरी जिले के महेश मरावी ने कहा, "हमारा गांव प्रस्तावित बसनिया बांध से 10 किलोमीटर दूर है। हमारे पास 10 एकड़ जमीन है। सरकार जो भी हो, सब पूंजीपतियों के दबाव में है, हमें कहीं से 10 एकड़ उपजाऊ जमीन दिला दो, फिर हमें बेघर कर दो, हम प्रकृति की गोद में रहने वाले लोग हैं, सांसारिकता, पानी से हमारा कोई लेना-देना नहीं है, जंगल, जमीन हमारी दौलत है। सरकार हमें बेदखल कर हमारी संस्कृति को नष्ट करना चाहती है। यह आदिवासियों के साथ अन्याय है।"

इसी तरह विधायक डॉ. अशोक मर्सकोल ने कहा कि विस्थापन की लड़ाई संसद से लेकर सदन तक लड़ी जाएगी। बरगी बांध बेघर और प्रभावित सिंह के राजकुमार संघ कहते हैं, "राजस्थान के बाड़मेर से लेकर गुजरात और मध्य प्रदेश के सौराष्ट्र तक 35 शहरों और उद्योगों की प्यास बुझाने की जिम्मेदारी नर्मदा की है।" जबकि नर्मदा किनारे छोटे-बड़े 52 शहरों का मल मूत्र व अन्य गंदगी नर्मदा में गिरता है। गौरतलब है कि बसनिया बांध की प्रशासनिक स्वीकृति एक अप्रैल 2017 को दी गई थी। बांध का निर्माण गांव ओढारी, तहसील घुघरी, जिला मंडला ओढी गांव, घाघी तहसील, मंडला जिले में किया जाना प्रस्तावित है। बांध से किसानों की 2443 हेक्टेयर निजी भूमि, 2107 हेक्टेयर वन भूमि और 1793 हेक्टेयर सरकारी भूमि यानी कुल 6343 हेक्टेयर की सिंचाई होगी। इसके साथ ही 42 गांवों में 8780 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई और 100 मेगावाट जलविद्युत पैदा करने का लक्ष्य रखा गया है। निर्माण की अनुमानित लागत

रु. 2731.17 करोड़। इस बांध से डंडोरी के 13 गांव और मंडला जिले के 18 गांव यानी कुल 31 गांव विस्थापित और प्रभावित होंगे।

यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि मंडला का भौगोलिक क्षेत्रफल 5800 वर्ग किलोमीटर है। वन विभाग की वार्षिक रिपोर्ट 2020-2021 के अनुसार 2015 में मंडला जिले का क्षेत्रफल 2835 वर्ग किमी था जिसे 2019 में घटाकर 2577 वर्ग किमी कर दिया गया है। 25800 हेक्टेयर वन क्षेत्र को घटाकर 258 वर्ग किलोमीटर कर दिया गया है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए बसनिया बांध विरुद्ध विरोधी संघर्ष समिति का कहना है कि बसनिया बांध को सूक्ष्म सिंचाई परियोजना में परिवर्तित किया जाना चाहिए। चूंकि नर्मदा घाटी चंकी-बोर्स बांध परियोजना चंकी-बोरास बांध परियोजना (नरसिंहपुर) को माइक्रो सिंचाई परियोजना में बदल दिया गया है जिससे न तो विस्थापन होगा और न ही जंगल डूब में आएगा।

(नरसिंहपुर) को सूक्ष्म सिंचाई परियोजना में परिवर्तित कर दिया गया है, न तो बेघर होगी और न ही जंगल को डूबेगी।

ब्रिटिश शासन के दौरान ब्रिटिश सरकार के लाभ के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया था, जबकि 1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत ने खुद को एक कल्याणकारी राज्य घोषित किया। लाभ एक घोषित कारक नहीं था लेकिन लगभग सभी विकास परियोजनाओं में आर्थिक क्षमता को प्राथमिकता दी गई थी। यह निश्चित रूप से आश्चर्यजनक नहीं था क्योंकि अधिकांश भारतीय नेता विदेशों में शिक्षा प्राप्त कर विदेशी प्रौद्योगिकी के विकास पर ध्यान केंद्रित कर रहे थे और इस तथ्य से प्रभावित थे कि भारत पश्चिमी देशों से बहुत पिछड़ा है। जवाहरलाल नेहरू जैसे बहुत कम नेता पश्चिमी देशों के विकास के मूल कारण को जानते थे कि वे अपने ही देश में और अपने उपनिवेशों में श्रमिकों का शोषण करते हैं। लेकिन देश की मिली-जुली अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाने वाले नेहरू और पीसी महलनोबिस जैसे लोगों ने तकनीक को भारत की समस्याओं के समाधान की कुंजी के रूप में लिया। नेहरू की किताब ने 'भारत एक खोज' में एक लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर काम करने के लिए औद्योगीकरण की आवश्यकता पर बल दिया। जिसमें साम्यवादी तानाशाही और पूंजीवादी शोषण के लिए कोई जगह नहीं थी। ऐसा करने के लिए भारत को अपने अंधविश्वासों और रूढ़िवाद से मुक्त होना होता था, अपनी परंपराओं को बदलना था और खुद को आधुनिक बनाना था। इस विचारधारा ने उन्हें बड़े बांधों और उद्योगों को आधुनिक भारत के तीर्थस्थल के रूप में मानने के लिए प्रेरित किया। परिस्थितिजन्य आवरणों और इससे जुड़े विशेषाधिकारों का असर आदमी के सोच पर इतना गहरा होता है कि वह अपने संकुचित दायरे से बाहर निकल इसको तब तक नहीं छोड़ पाता जब तक नयी परिस्थितियों से साक्षात्कार या बहिष्कृत समूहों के प्रतिकार उसके पूर्वाग्रहों पर आघात नहीं करते।¹²

संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रस्तुत आकड़ों के अनुसार 1999 में भारत में 5,07,000 लोग सांप्रदायिक संघर्ष की वजह से आईडीपी की श्रेणी में थे। भारत में बीते पिछले तीन दशकों में धार्मिक व सांप्रदायिक संघर्षों के कारण 30 लाख से भी अधिक लोग आईडीपी की श्रेणी में आ गए। इनमें कश्मीर घाटी से 3,50,000 कश्मीरी पंडित, 1984 के सिख दंगों के दौरान, दिल्ली-कानपुर के मध्य तथा 1989 के हिंदू-मुस्लिम दंगों व 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद की घटनाओं में 2,00,000 आईडीपी, 1985 के जातीय दंगों में 50,000 आईडीपी, गुजरात में 2002 के सांप्रदायिक दंगों में 1,00,000 आईडीपी, 1980 के दशक में कश्मीर के सीमावर्ती गांवों से 5,00,000 आईडीपी शामिल हैं। हम जुलाई 2005 की मुंबई बाढ़ और किना भूकंप जैसी घटनाओं को शामिल कर सकते हैं। बाढ़, सूखे और तेजी से गंभीर भूस्खलन, मरुस्थलीकरण और पर्यावरणीय तबाही की बढ़ती त्रासदियों के कारण आईडीपी की संख्या तेजी से बढ़ रही है। उदाहरण के लिए, सरकारी आंकड़ों का अनुमान है कि 1953 की बाढ़ में कुल 524 लोग मारे गए थे, जबकि उस अवधि के दौरान 244.8 मिलियन हेक्टेयर भूमि प्रभावित हुई थी। इसी तरह, 1960 के दशक के मध्य में बाढ़ से मरने वालों की संख्या 1,000 से अधिक हो गई थी। 1985 में, बाढ़ ने 590.9 मिलियन हेक्टेयर भूमि को प्रभावित किया, जिससे मरने वालों की संख्या 40,593 हो गई। 1998 में मरने वालों की संख्या 58,459 थी, जिसमें 687.2 मिलियन हेक्टेयर प्रभावित थे, जबकि 2002 में 26,247 की तुलना में, जब 224.4 मिलियन हेक्टेयर जलमग्न था।

पछले कुछ वर्षों में हिन्दू चेतना ने एक नया मोड़ लिया है। उसमें अस्तित्व का आग्रह है, परम्परा की पुकार है। अपने आप में यह मोड़ गलत नहीं है। संक्रमण की स्थिति में सभी सभ्यताएँ आत्मचेतन दृष्टि से अपने वर्तमान का परीक्षण कर भविष्य की दिशा निर्धारित करती हैं। यह आत्मविश्लेषण एक तरह से सामाजिक व्याधियों का निदान होता है, जिसके आधार पर समाज अपनी चिकित्सा करता है।¹³ अनुसंधान से पता चलता है कि अधिकांश विस्थापन परियोजनाओं में इस कर्तव्य को पूरी तरह से भुला दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप परियोजना से प्रभावित लोगों की दुर्दशा हुई है। समाज में अपराध बढ़ रहे हैं। मनुष्य की संवेदना खत्म हो रही है। परस्पर अविश्वास बढ़ रहा है। आर्थिक और यौन अपराधों की बाढ़ सी आ रही है।¹⁴ हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि जब हम विकास को विस्थापन और

अभाव को मानवाधिकारों का मुद्दा बनाने की बात करते हैं, तो हम विकास के औद्योगीकरण की आवश्यकता पर सवाल नहीं उठा सकते हैं। अन्य प्रकार के जबरन विस्थापन भी होते हैं अर्थात् वे जो किसी प्रकार की आपदा, संघर्ष या विकास परियोजना के कारण विस्थापित हुए हैं लेकिन देश के आंतरिक सीमा के अन्दर रहते हैं उन्हें आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्ति (पक्च) कहा जाता है, लेकिन जो विस्थापित हो कर देश के बाहरी इलाके में रहते हैं अर्थात् देश की सीमा पार करने वालों को शरणार्थी (रिफ्यूजी) कहा जाता है। उदाहरण के लिए गुजरात में 2002 के मुस्लिम विरोधी दंगों के दौरान राज्य से देश के अन्य हिस्सों में भाग गए थे, ऐसे लोग आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्तियों की श्रेणी में आएं भले ही नेपाल जाने वाले भूटानी शरणार्थियों या भारत आने वाले बांग्लादेशी शरणार्थियों से अधिक यात्रा करनी पड़े। हमारे देश का आकार इसे समझाने के लिए काफी है। भूटानी को शरणार्थी का दर्जा प्राप्त करने के लिए 200 किलोमीटर से कम की यात्रा करनी पड़ती थी, जबकि गुजरात से 1,200 किलोमीटर की यात्रा के बाद उत्तर प्रदेश में आने वाले मुसलमानों को आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्तियों के रूप में माना जाएगा।

विस्थापितों में से बहुत कम लोग कहीं और बसने में सक्षम हुए हैं। ओडिशा में इसकी कुल डीपी का केवल 35.27 प्रतिशत पुनर्वास किया गया था, आंध्र प्रदेश में पुनर्वासित आबादी 28.82 प्रतिशत थी और गोवा में यह 40.78 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। जबकि केरल में केवल 13.68 प्रतिशत लोग अन्यत्र रहने में सक्षम थे, पश्चिम बंगाल में 11.18 प्रतिशत और गुजरात में 23.82 प्रतिशत आबादी का पुनर्वास किया गया था। अध्ययन किए गए सभी राज्यों में से केवल 17.94 प्रतिशत आबादी पूर्ण पुनर्वास हो पाया। हम यहां कहीं और बसने की बात कर रहे हैं न्यायोचित पुनर्वास की नहीं दोनों प्रक्रियाएं काफी अलग हैं। कहीं और बसने का अर्थ है एक बार भौतिक रूप से, बिना किसी सहायता के अपने निवास स्थान को छोड़ देना। पुनर्वास का अर्थ है आर्थिक संसाधनों, सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक संरचनाओं और सामुदायिक समर्थन से पूर्ण लोगों को स्थानांतरित करना संक्षेप में आजीविका की बहाली। वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट-2000 में कहा गया है- अभिवृद्धि अनिवार्यतः छन-छन कर निचले स्तरों तक पहुंच जाए, ऐसा नहीं होता, न ही विकास सामान्य लोगों की आवश्यकताओं के लिए निर्देशित करता ही होता है। कोई एक नीति विकास को गति दे भी नहीं सकती है। दरअसल विकास के लिए एक समेकित प्रयास की जरूरत है और वह भी यदि पूरी ईमानदारी एवं तत्परता से हो तब।"⁵

संदर्भ:

1. जंगल की हकदारी राजनीति और संघर्ष, कमल नयन चौबे, वाणी प्रकाशन, पेज नं0 1
2. लोकतंत्र की चुनौतियाँ, सच्चिदानंद सिन्हा, वाणी प्रकाशन, पेज नं0 8
3. संक्रमण की पीड़ा, श्यामचरण दुबे, वाणी प्रकाशन, पेज नं0 46
4. विस्थापन का दर्द, राजेन्द्र प्रसाद, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पेज नं0 viii
5. आदिवासी विकास से विस्थापन, रमणिका गुप्ता, (2008) राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पेज नं0 135
6. <https://hindi.newsclick.in/repeated-evictions-caused-tribals-mental-spiritual-physically-devastated>

